युनिवर्सिटी डिपार्टमेंट ऑफ केमिकल टेक्नॉलॉजी। मगर आज विश्वविद्यालय कठिन परिस्थिति में हैं। यह उन हज़ारों छात्रों के लिए चिंता का विषय है जो आई.आई.टी. में प्रवेश नहीं कर पाते या इंजीनियरिंग के अलावा किसी शाखा में आगे बढ़ना चाहते हैं।

यहां एक अन्य मॉडल इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ साइन्स की बात की जा सकती है। यह संस्था भी धीरे-धीरे अपनी शताब्दी की ओर बढ़ रही है। यहां विज्ञान व इंजीनियरिंग साथ-साथ एक ऐसे माहौल में चलते हैं जो शोध को बढ़ावा देता है। यहां ज़्यादा ध्यान स्नातकोत्तर और शोध उपाधियों पर दिया जाता है। वैसे यह सही है कि एक समय था जब कुछेक आई.आई.टी. में शोध को सम्मानजनक स्थान प्राप्त था। स्वर्ण जयंती एक मौका है जब आई.आई.टी. अनुसंधान के प्रति अपनी निष्ठा को पुनर्जीवित कर सकते हैं।

आज तक आई.आई.टी. ने इंजीनियरिंग क्षेत्र में उत्कृष्ट स्नातक शिक्षा को महत्व दिया है। उनकी सफलता दो बातों पर टिकी है - छात्रों के चयन में कठोरता और प्रशिक्षण की जांची परखी रणनीति। परन्तु चिंता का विषय यह है कि जहां आई.आई.टी. का ब्राण्ड चमक रहा है, वहीं देश में वैज्ञानिक अनुसंधान का आउट पुट घट रहा है।

जयंतियां व बरसियां महत्वपूर्ण होती हैं। इनसे हमें इतिहास पर नज़र डालने और आगे के बारे में सोचने का मौका मिलता है। आई.आई.टी. के संदर्भ में यह समय है जब उन्हें स्नातकोत्तर शिक्षा और अनुसंधान पर ज़ोर देना चाहिए। आशा के कुछ संकेत सामने आए भी हैं। लम्बे समय तक आई.आई.टी. परिसरों से बहिष्कृत जीव विज्ञान अब वहां जड़ें पकड़ रहा है। आने वाले दिनों में कई टेक्नॉलॉजी जीव विज्ञान के बुनियादी शोध में से ही उभरेंगी। लिहाज़ा यह उचित ही है कि हमारे सर्वोत्तम तकनीकी संस्थानों में यह विषय शामिल किया जाए। इस संदर्भ में फेकल्टी का बहुत महत्व होगा। इसलिए इन नए विषयों में नियुक्ति सम्बंधी नीतियों और अनुसंधान को बढ़ावा देना निहायत महत्वपूर्ण है। पूर्व छात्रों द्वारा दिखाई गई रुचि भी उत्साहवर्धक है। आई.आई.टी. ने बिज़नेस, टेक्नॉलॉजी, वाणिज्य और सरकार के लिए कई अग्रणी व्यक्ति दिए हैं। इनमें से कुछ लोग यदि हमारी शैक्षणिक संस्थाओं को लेकर गंभीरता से विचारे करें, तो शायद इस क्षेत्र में एक व्यापक पुनर्जागरण संभव है। *(स्रोत विशेष फीचर्स)*

प्रवासी भारतीय और विज्ञान

पी. बालाराम

विकासशील देशों से प्रशिक्षित लोगों का पलायन लगभग 50 वर्षों से जारी है। यह पलायन आम तौर पर उत्तरी अमरीका की ओर होता है, जहां के ढोल ज़्यादा सुहावने हैं। धीमी गति से होने वाला पलायन धीरे-धीरे एक सैलाब में बदल गया है। कई वैज्ञानिक और इंजीनियर्स आगे की पढ़ाई या पोस्ट डॉक्टरल अनुसंधान के लिए जाते हैं और वहीं के होकर रह जाते हैं। उनके मूल देश को उनका कोई लाभ नहीं मिल पाता। इस तरह से तकनीकी रूप से हुनरमंद मानव संसाधन का दक्षिणी देशों से उत्तरी देशों में पलायन 'ब्रेन ड्रेन' या 'प्रतिभा पलायन' कहलाता है। पिछले वर्षों में भारत इस 'प्रतिभा पलायन' का प्रमुख स्रोत रहा है।

भारत से पश्चिम की ओर प्रवासियों की संख्या जब काफी हो गई तो अनिवासी भारतीयों के एक बड़े समूह के अस्तित्व को लेकर जागरूकता पैदा हुई। आज अकेले संयुक्त राज्य अमरीका में कई लाख अनिवासी भारतीय मौजूद हैं। वैसे देखा जाए तो यह समूह लगभग सभी महाद्वीपों में फैला हुआ है।

तुलनात्मक रूप से देखें तो संख्या कोई बहुत ज़्यादा नहीं है - मात्र 2 करोड़ अनिवासी भारतीय विभिन्न देशों में हैं जबकि हमारी कुल आबादी एक अरब से ज़्यादा है। मगर

रुपए की कीमत गिरने और डॉलर की कीमत उठने के साथ अनिवासी भारतीयों की वित्तीय ताकत बढ़ी है और देश में डॉलर की आगम बढ़ाने के लिए भारत सरकार अब अनिवासी भारतीयों पर ज़्यादा ध्यान दे रही है। 1990 के दशक में भारत का विदेश मुद्रा भंडार चिंता का विषय था मगर आज स्थिति बेहतर है। आज भारतीय रिज़र्व बैंक 70 अरब डॉलर के विशाल भंडार का स्वामी है। इसमें अनिवासी भारतीयों का योगदान उल्लेखनीय है। अनिवासी भारतीयों का यह योगदान आकर्षक ब्याज़ दरों और कभी भी पैसा निकालने की सुविधा के चलते आया है। ज़ाहिर है, निवेश सम्बंधी फैसलों में भावनात्मक लगाव की भूमिका ज़्यादा नहीं हो सकती।

अलबत्ता, ऐसे संकेत हैं कि भारत के विकास में अनिवासी भारतीयों की रुचि का एक कारण यह है कि वे इस देश की उन संस्थाओं को कुछ देना चाहते हैं जिनकी वजह से वे इतने सफल रहे हैं। खास तौर से इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ टेक्नॉलॉजी (आई.आई.टी.) का नाम उल्लेखनीय है। आज यू.एस. में बसे कई अत्यंत कामयाब हिन्दुस्तानियों की शिक्षा आई.आई.टी. में ही हुई है। पिछले कुछ वर्षों में कई पूर्व छात्रों ने विभिन्न आई.आई.टी. को काफी धन उपलब्ध कराया है। रोचक बात है कि आई.आई.टी. के पूर्व छात्रों द्वारा शुरू किया गया सबसे सफल उद्यम इंफोसिस है। इंफोसिस के अनुभव ने दिखा दिया है कि भारत की धरती से काम करके भी पश्चिमी बाज़ारों का दोहन सम्भव है। मगर सफलता के अधिकांश उदाहरण तो यू.एस. में ही स्थित हैं। अब इन सम्पन्न, अनिवासी पूर्व छात्रों ने अपनी पूर्व संस्थाओं के साथ सम्बंधों को पुनर्जीवित करने के प्रयास किए हैं। यह सही है कि आज आई.आई.टी. में निजी योगदान बढ़ रहा है। मगर यह नहीं भूलना चाहिए कि सार्वजनिक निवेश के 50 वर्षों में इन संस्थानों ने पश्चिम की इतनी सेवा की है कि कभी-कभार मिलने वाले ये परोपकारी योगदान उसकी भरपाई कभी नहीं कर सकेंगे। जिन संस्थाओं व जिस देश ने इन छात्रों को ढाला, उनके प्रति इन छात्रों का रवैया दुधारी तलवार ही है।

कुछ समय पहले प्रभावशाली अनिवासी भारतीयों के एक समूह ने एक प्रस्ताव रखा था। यह प्रस्ताव आई.आई.टी. के प्रबंधन पर काबिज़ होने का था और कहा गया था कि इसका मकसद तकनीकी शिक्षा का वैश्वीकरण है। अखबारी रपटों से पता चलता है कि प्रस्ताव की राशि 5000 करोड़ रुपए (1 अरब डॉलर) के करीब थी। यह प्रस्ताव तो धराशायी हो गया मगर यकीन मानिए, जल्दी ही ऐसे और प्रस्ताव सामने आएंगे। लगता है कि सार्वजनिक क्षेत्र का विनिवेश आजकल पसंदीदा नीति है मगर उच्च तकनीकी शिक्षा के क्षेत्र में सरकारी संस्थाओं की बिक्री शायद ही वांछनीय हो।

ऐसा लगता है कि 'प्रतिभा पलायन' ने अचानक एक नया महत्व अख्तियार कर लिया है। जनवरी में प्रधानमंत्री ने दो बड़े-बड़े सम्मेलनों को संबोधित करते हुए प्रतिभा पलायन का ज़िक्र किया। पहला सम्मेलन था भारतीय विज्ञान कांग्रेस का बैंगलोर सत्र। दूसरा अवसर था 'प्रवासी भारतीय दिवस'। वैसे तो चर्चा मुख्यतः दोहरी नागरिकता के सवाल पर केंद्रित रही मगर पूरी चर्चा में विडम्बना यह रही कि सम्पन्न देशों में बसे अनिवासी भारतीयों तथा अन्य देशों में बसे अनिवासी भारतीयों के बीच भेद करने के प्रयास किए गए। सरकार को तो डॉलर का अत्यधिक आकर्षण है और बात समझ में भी आती है। मगर अन्य लोगों को संभवतः यह लगता है कि हमारा विदेशी मुद्रा भण्डार अपनी टेक्नॉलॉजी व उत्पादों के निर्यात से बढ़े, न कि अनिवासी भारतीयों के योगदान से।

कई अत्यंत सफल अनिवासी भारतीय दिल्ली सम्मेलन में प्रधानमंत्री से यह सवाल पूछे बगैर न रह सके, 'भारतीय लोग अन्यत्र (भारत से बाहर) इतना अच्छा प्रदर्शन क्यों करते हैं? यह सवाल वैज्ञानिक जगत में अक्सर उठता है। औसत अनिवासी भारतीय वैज्ञानिक पश्चिम में जाकर बेहतर प्रदर्शन करता है। भारत वापिस आने पर उसके प्रदर्शन में प्रायः उल्लेखनीय गिरावट देखी जाती है। एक मत यह है कि शायद सर्वोत्तम अनिवासी भारतीय वैज्ञानिक यहां मौजूद हालात में लौटना नहीं चाहते। इस मत का वर्चस्व बढ़ रहा है। इसके चलते अनिवासी भारतीयों को वापिस लाने की कोशिश में कई आकर्षण दिए जाते रहे हैं। विज्ञान व टेक्नॉलॉजी विभाग की स्वर्ण जयंती योजना के पीछे मंशा

यही है कि 'प्रतिभा पलायन' रुके। इस योजना में 'निवासी' प्रतिभा को बढ़ावा देने के कई प्रावधान हैं। इस बात में कोई संदेह नहीं कि अनिवासी भारतीयों की वित्तीय व राजनैतिक ताकत बढ़ने के साथ सरकार इन अनिवासी भारतीय वैज्ञानिकों को आकर्षित करने के लिए कई योजनाएं बनाएगी।

'प्रतिभा पलायन' को थामने व पलटने के उपायों के संदर्भ में चीन के अनुभवों को देखना लाभदायक होगा। वहां भी वैज्ञानिकों की युवा पीढ़ी का पलायन एक समस्या है। इसके मद्देनज़र चीन सरकार ने अनिवासी चीनी वैज्ञानिकों को लुभाने के लिए अवसरों व प्रलोभनों की एक व्यापक व्यवस्था तैयार की है। बेहतर वेतन, बेहतर सुविधाओं के अलावा विशेष प्रोफेसरशिप, आकर्षक अनुदान और यहां तक कि बेहतर प्रयोगशालाओं और 'स्वतंत्र संस्थान' तक की योजनाएं हैं। बेजिंग में प्रस्तावित नेशनल इंस्टीट्यूट ऑफ बॉयोलॉजिकल साइंसेज़ में वेतन यू.एस. व चीन में मिलने वाले वेतनों के बीच में कहीं निर्धारित किए गए हैं। अन्य आकर्षणों में बड़ी-बड़ी प्रयोगशालाएं, पर्याप्त अनुदान और प्रशासनिक स्वायत्तता वगैरह शामिल हैं। अलबत्ता, चीन के इन प्रयासों की आलोचना भी हुई है। मसलन, ऐसा लगता है कि प्रयोगशालाएं स्थापित करने के लिए अनिवासी चीनी वैज्ञानिकों को जो अनुदान दिए गए हैं, उनकी वजह से 'अनुपस्थित' वैज्ञानिकों की एक जमात तैयार हो गई है। इन वैज्ञानिकों ने अनुसंधान के लिए उपलब्ध संसाधनों में से एक बड़ी राशि तो हथिया ली है मगर ये इस शर्त का निरंतर उल्लंघन करते हैं कि उन्हें साल में 6-9 माह चीन में बिताना होगा। अनुदान प्राप्त करने के बाद वे खुद तो विदेशों में भ्रमण करते हैं और प्रयोगशालाएं उपेक्षित पड़ी रहती हैं।

अब हर वर्ष 9 जनवरी को 'प्रवासी भारतीय दिवस' मनाया जाएगा। नव वर्ष पर विज्ञान कांग्रेस और प्रवासी भारतीयों का जश्न एक के बाद एक होंगे। विज्ञान और अप्रवासी भारतीय, दोनों को एक साथ बढ़ावा देने की योजनाएं उगेंगी।

निवासी भारतीय वैज्ञानिकों का एक निष्क्रिय व उदासीन समूह इस घटनाक्रम को बाहर से देख भर सकेगा। एक ओर तो सरकार ने दोहरी नागरिकता की पेशकश के मामले में तीसरी दुनिया व प्रथम दुनिया में बसे अनिवासी भारतीयों के बीच भेद की दीवार खड़ी कर दी है। यह आशंका भी है कि चीनी उदाहरण का अनुकरण करने के मोह में भारत सरकार अपने तीसरी दुनिया के परिवेश में प्रथम विश्व के टापू खड़े कर देगी। ज़ाहिर है कि अनिवासी भारतीयों को दोनों हाथों में लड्डू बहुत भाएंगे। भारत के आर्थिक, वैज्ञानिक व टेक्नॉलॉजी विकास में उनकी भागीदारी से नए अनुभव व नए हुनर यहां आएंगे, जो यकीनन लाभकारी रहेगा। मगर दुख की बात यह होगी कि अनिवासी भारतीयों के प्रति मोह के चलते कहीं सरकार व उसके सलाहकार निवासी भारतीयों को भुला न दें। *(स्रोत फीचर्स)*

स्रोत के ग्राहक बनें, बनाएं

सदस्यता शुल्क कृपया एकलव्य, भोपाल के नाम बने ड्राफ्ट या मनीऑर्डर से

एकलव्य, ई-7/ एच.आई.जी. 453, अरेरा कॉलोनी,

भोपाल (म.प्र.) 462 016

के पते पर भेजें।

स्रोत सजिल्द

150 रुपए में उपलब्ध हैं।

डाक से मंगवाने पर 25 रुपए अतिरिक्त।